International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 01-05

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 01-05
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-12-2022
Accepted: 05-01-2023

ईशा शर्मा
शोधच्छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
ईशा शर्मा
शोधच्छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

आधुनिक परिवेश में उत्पन्न कतिपय समस्याओं के निदान में बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य की भूमिका

ईशा शर्मा

सारांश
मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से संबंधित होने के कारण उत्पन्न समस्याओं के संदर्भ में मनुष्य ही पीड़ित होता है एवं उसके निदानार्थ मनुष्य स्वयं ही उपक्रम करता है। कतिपय साहित्य के अनुशीलन से भी समस्याओं का निराकरण संभव है। इसी प्रसंग में बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य समीचीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत शोध-पत्र कतिपय सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु है।

कूटशब्द: उत्पन्न कतिपय समस्याओं, बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य, सामाजिक

प्रस्तावना
बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य वर्तमान परिदृश्य में उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु उचित प्रतीत होता है। प्रस्तुत महाकाव्य में बोधिसत्व के जीवन चरित के साथ-साथ उनके मानवीय गुणों एवं मूल्यों को समाज के अनुकूल परिवेश एवं वातावरण को प्राप्त करने के लिए सम्यक एवं उचित पाया गया है जिससे न केवल शान्ति एवं न्याय की स्थापना होगी अपितु सामाजिक समस्याओं का निदान भी संभव होगा। प्रस्तुत महाकाव्य १४ सर्गों में निबद्ध है जिसमें बोधिसत्व (बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अवस्था) के उदात्त गुणों का चित्रण किया गया है जो समाज के लिए प्रेरणादायी है।प्रथम सर्ग में बोधिसत्त्व को एक उदार व्यापारी के रूप में दर्शाया गया है जिसमें अपने व्यापारिक प्रतिस्पर्धी के प्रति लेशमात्र भी ईर्ष्या नहीं है। अन्त में वह अपनी बुद्धिमत्ता, अनथक परिश्रम एवं ईमानदारी के फलस्वरूप उस व्यापार यात्रा में महती सफलता अर्जित करते हैं।

इस गुण से एक स्वस्थ्य व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के प्रति समाज को प्रेरणा मिल सकती है जिससे मनुष्य के शरीर के छः शत्रुओं पर नियंत्रण किया जा सकता है। इस संदर्भ में प्रस्तुत श्लोक आवश्यक है÷

एवं च ये द्रव्यमावाप्य लोके मित्रेषु धर्मे च नियोजयन्ति।
अवाप्तसाराणि धनानि तेषां भ्रष्टानि नांते जनयंति तापम्।।

न्याय दर्शन भी कहता है इच्छा और द्वेष आत्मा के लिङ्ग हैं।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुः खज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

गीता में भी कहा गया है÷

धयायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।

एक अन्य श्लोक भी श्रीकृष्ण द्वारा कहा गया है ÷

क्रोधोद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

अर्थात् विषयों के बारे में सोचते-सोचते मनुष्य का उनमें लगाव उत्पन्न हो जाता है। उस लगाव से काम,काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति का नाश,स्मृति नाश से ज्ञान का नाश,ज्ञान के नाश से वह आत्मा स्वयं नष्ट हो जाती है अर्थात् अधर्म में फंस जाती है। द्वितीय सर्ग में बोधिसत्त्व को काशी नरेश के रूप में उपस्थापित किया गया है। उदात्त चरित्र काशी नरेश अपने विस्तृत राज्य का दौरा करते हैं एवं ऐसे व्यक्ति की खोज में हैं जो उन्हें उनके दोष बताए। दोनों नरेशों के रथ के सारथि उक्त संकरे मार्ग को पार करने में पहल प्राप्त करने को उत्सुक हैं। जबकि एक समय में एक रथ ही उस मार्ग से गुजर सकता है।अन्त में वे यह समझौता करते हैं कि उस राजा के रथ को पहले गुजर जाने का अधिकार दिया जाए जो अपने प्रतिद्वन्द्वी से नैतिक गुणों में बढ़-चढ़कर हो। संयोगवश दोनों राजा अवस्था, पराक्रम, राजनीति-कुशलता, कुल, सम्पत्ति तथा अन्य बातों में समान है। फिर भी बोधिसत्व का चरित्र कोसल नरेश के चरित्र से इस बात में श्रेष्ठ सिद्ध होता है कि अपना अपकार करने वालों के प्रति भी वह उदार एवं दयावान हैं। उपर्युक्त सर्ग में बोधिसत्त्व के अत्यंत सूक्ष्म मानवीय गुण का परिचय मिलता है। वह अपने प्रति कृतघ्न रहने वालों के प्रति भी दयावान एवं कृतज्ञ है। यह गुण हमें समाज एवं विश्व को शान्तिपूर्ण एवं न्यायोचित बनाने में सहायक प्रतीत होता है। मनुष्य के अंदर सहनशीलता का गुण विद्यमान होना चाहिए जिससे न केवल सामाजिक एवं धार्मिक वैमनस्य को टाला जा सकता है, अपितु स्वयं के चारित्रिक गुणों का भी विकास किया जा सकता है। इसी प्रकार अगले तीसरे और चौथे सर्ग का भी यही सारांश है कि अपने प्रतिद्वन्द्वी कोसल नरेश के अपने राज्य को हस्तगत कर लेने के बावजूद वह वदान्यता एवं उदारता की मूर्ति अपने शत्रु राजा को उसके महान अपराध किए जाने पर भी शान्तिपूर्वक क्षमा कर देते हैं। पांचवे सर्ग में बोधिसत्त्व का बोधत्व प्राप्ति के पूर्व शान्तिमार्ग को अंगीकार करने का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान परिस्थितियों में यह एक महत्वपूर्ण मानवीय गुण है।जिससे न केवल मनुष्य की उन्नति होती है अपितु समावेशी विकास के लिए भी एक आवश्यक है।

छठे सर्ग में एक युवक भिक्षु की कथा है जो किसी रूपवती युवती को देखकर उस पर मोहित हो जाते हैं उनके साथी भिक्षु उन्हें अरिष्टपुर नरेश शिवि के रूप में अवतरित होने वाले बोधिसत्व की प्रेरणाप्रद कथा सुनाकर सांसारिक विषयवासनाओं से ऊपर

उठने का उपदेश देते हैं। साथ ही यह संदेश भी समाज को देने का प्रयास कर रहे हैं कि यदपि वंशावली एवं संतानोत्पत्ति के लिए कामवासना उचित है परन्तु सांसारिक मोह माया से रहित व्यक्ति स्वयं का उत्थान ही करता है एवं समाज, राष्ट्र के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है।किसी भी वस्तु का अतिरेक उचित नही होता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति,परिवार, समाज में कलह एवं द्वेष की भावना ही उत्पन्न होती है एवं सामंजस्य के अभाव में विकास संभव नहीं हो पाता। बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य कतिपय इन्हीं सामाजिक समस्याओं के निदान हेतु बोधिसत्व के आवश्यक गुणों को रेखांकित करता है। बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात महात्मा बुद्ध एक सामाजिक आदर्श के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करते हैं।बुद्ध स्वयं शान्ति, न्याय, दया, सहिष्णुता एवं समभाव आदि गुणों के परिचायक हैं÷

न चैष धर्मो वनए एव सिद्धः
पुरेऽपि सिद्धिर्नियता यतीनां।
बुद्धिश्च यत्नश्च निमित्तं अत्र वनं च लिङ्गं च हि भीरुचिह्नं।।

अर्थात् उद्धार केवल जंगलों में ही नही होता है, एक शहर में भी तपस्वियों के मोक्ष को पूरा किया जा सकता है। जंगल, उपाधि आदि केवल कायरता के संकेत हैं। नवें सर्ग में सेनापति के साथ महाराज शिवि का संवाद वर्णित है।जिसमें उनके मनोवैज्ञानिक संघर्ष को काव्यमय अभिव्यक्ति मिली है।जब सेनापति अपनी श्रेष्ठ पतिव्रता पत्नी को महाराज शिवि को अर्पित करना चाहता है तो शिवि (जो बोधिसत्व का एक रूप है) कहते हैं मित्र! मुझे इस कार्य में कुछ दोष दिखाई देता है÷

पापं प्रकुर्वन् मनुते मनुष्यो
मदुष्कृतं वेद न कश्चिदन्यः।
किन्तु स्थिता देवगणास्तदीयं
जानन्ति सर्वं ह्शुभं शुभं वा।।

दसवें सर्ग में बोधिसत्त्व एक मनोयोगी कृषक के रूप में अवतरित होते हैं। काशी के नरेश ब्रह्मदत्त के राज्य में एक धार्मिक कृषक परिवार निवास करता है। उसके परिवार में एक कृषक, उसकी पत्नी, उनका एक पुत्र और एक पुत्री तथा एक सेविका भी है। कृषक का पुत्र खेत में सर्प के कांट जाने से मृत्यु को प्राप्त होता है। फिर भी कृषक मृत पुत्र को देखकर अविचलित भाव से अपने कर्म में तत्पर रहता है। मानवीय मन पर अतिमानवीय संयम का यह अपूर्व उदाहरण है। कृषक परिवार के सभी सदस्य मृत्यु को शरीर का स्वाभाविक धर्म मानकर अपने प्रिय संबंधी के निधन को एक स्वाभाविक घटना के रूप में ग्रहण करते हैं।यहां पर यह शिक्षा प्राप्त होती है कि मनुष्य को समभाव एवं स्थिरता से रहना चाहिए परिस्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल। कर्म में तत्परता भी मनोयोगी कृषक अपना परम धर्म मानते हैं एवं कर्मारूढ़ होकर वह अपने शोक को व्यक्त भी नही करते हैं। गीता में भी कहा गया है÷

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृत्यस्य च।
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं हे अर्जुन! जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इस अपरिहार्य विषय में शोक नही करना चाहिए। मनोयोगी कृषक की भांति हमें भी अपने जीवन को आत्मसंयमित रखना चाहिए जिससे प्रतिकूल परिस्थिति आने पर भी हम निरन्तर अपने कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर होते रहें। एवं अपने कर्म के प्रति प्रतिबद्ध रहें जिससे सामाजिक संघर्ष एवं मूलभूत आवश्यकताओं की समस्या का निदान संभव हो सकता है।यदि मनुष्य अपने कर्म को पूर्ण निष्ठावान होकर स्थिर एवं आत्मकेंद्रित मन से करता रहे तब उसकी दरिद्रता एवं अभाव समाप्त हो सकता है।प्रस्तुत महाकाव्य में हम बोधिसत्व के इसी गुण से प्रेरणा ले सकते हैं। तभी स्वस्थ्य एवं

सामंजस्यपूर्ण समाज की परिकल्पना की जा सकती है।कर्मवाद पर बल देने के लिए ईशावास्योपनिषद् का मंत्र २ यहां उद्धृत किया जा सकता है÷

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतम समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

तेरहवें सर्ग में बोधिसत्त्व को एक विपन्न व्यापारी के रूप में दर्शाया गया है। वह व्यापार में हानि हो जाने पर अकिंचन अवस्था में अपने मित्र पीलिय नामक दूसरे व्यापारी के पास जाते हैं। पीलिय को उसकी विपन्न अवस्था में बोधिसत्त्व ने अपनी आधी संपत्ति का दान करके उपकृत किया था। परन्तु पीलिय अपने विपन्न मित्र की सहायता नही करता। बोधिसत्त्व अपने अकृतज्ञ मित्र के प्रति कोई दुर्भावना का भाव नही रखते हैं। उपकारी बोधिसत्त्व एवं उनके कृतघ्न मित्र पीलिय के चरित्रों के बीच महान व्यवधान की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति इस कथा की विशेषता है। अंतिम चौहदवें सर्ग में वर्णित कथा में बोधिसत्त्व एक अध्यापक के रूप में दर्शाए गए हैं। वह अपने शिष्य पापक को,जो अपने पापसूचक नाम को परिवर्तित कर कोई अच्छा सा नाम रखना चाहता है। वही बोधिसत्त्व पापक को कोई सुंदर सा नाम ढूंढने को भेजते हैं, परन्तु पापक प्रायः सभी नामों को अर्थान्वित न पाकर अपने वर्तमान नाम को परिवर्तित करने का विचार त्याग देता है। इस कथा द्वारा यह शिक्षा दी गई हकि नाम का व्यक्ति के चरित्र के साथ कोई संबंध नही होता अतः सच्चरित्र महनीय है, सद्गुण सूचक नाम धारण कर लेना मात्र नहीं।यहां पर सच्चरित्र होने पर बल दिया गया है। जो व्यक्ति एवं समाज की समस्याओं के निराकरण हेतु आवश्यक है। चरित्रवान होने से मनुष्य कुकृत्यों के दुष्प्रभावों को भलीभांति समझता है एवं अपने चरित्र के पतन न होने के प्रति सतर्क रहता है क्योंकि कहा गया है धन तो आता जाता रहता है उससे मनुष्य का पतन नही होता परन्तु चरित्र के क्षीण हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है। श्लोक इस प्रकार है÷

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।

निष्कर्ष

उपर्युक्त समस्त तथ्यों का अवलोकन करने के पश्चात यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य में बोधिसत्त्व के सद्गुण समाज के लिए अनुकरणीय है जिससे न केवल सामाजिक, आर्थिक, न्यायिक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है अपितु शांति की भी स्थापना की जा सकती है। बोधिसत्व के विशिष्ट गुण दया, सहनशीलता, उपकार, क्षमाशीलता, वदान्यता समाज के लिए ग्राह्य है जिससे सुख एवं शान्ति की स्थापना की जा सकती है। बोधिसत्व (बुद्धत्व) प्राप्ति से पूर्व की अवस्था है जिसका क्रमिक विकास प्रस्तुत महाकाव्य बोधिसत्वचरितम् महाकाव्य के विभिन्न सर्गों में हमें दिखाई देता है। प्रथम से लेकर अंतिम चौदहवें सर्ग तक बोधिसत्व को विभिन्न रूपों में दर्शाया गया है। वह कभी वणिक है, कभी राजा, मनोयोगी कृषक के रूप में अवतरित होते हैं इनके गुण हमारे समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिनका अनुसरण सामाजिक दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है।चाहे धार्मिक मतभेद एवं वैमनस्य का निवारण करना हो या प्रश्न चरित्रवान होने का हो, कर्म की महत्ता प्रतिपादन का हो, परोपकार को बढ़ावा देने का हो इन सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए बोधिसत्व के गुणों को अंगीकृत करने की आवश्यकता है।परोपकारी होने पर मनुष्य दूसरों का भी हित साधन करने को तत्पर रहता है जिसके फलस्वरूप उसके स्वयं के अवगुण भी समाप्त हो जाते हैं÷

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्यु पदे-पदे।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बुद्धचरितम् ११.५
2. न्याय दर्शन १.१०
3. गीता २.६२
4. गीता २.६३
5. बुद्ध चरितम् ९.१८
6. बोधिसत्वचरितम् ९.५
7. गीता २.२७
8. ईशावास्योपनिषद् मंत्र २
9. मनुस्मृति
10. चाणक्य-नीति १७.१६।